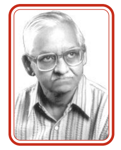

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-26 | अप्रैल-2016 | अंक-4

प्रेम बाजारों में नहीं मिलता

प्रेम तो 'ध्यान' के माध्यम से सतगुरु के द्वारा ही; ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होता है। अत: मनुष्य को समय मिलते ही, अपने आसपास चल रहे सत्संग में जाना चाहिए।

पूरा विश्व एक मिथ्या व सुनहरे सपने से घिरा हुआ है।
हकीकत में ऐसा कुछ नहीं है। ये सभी विनाशी हैं।
आत्मा अजर व अमर है। उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता।
जीवात्मा (बून्द) का संबंध सीधा परमात्मा (सागर) से है।

-सन्त श्री सतीश कालड़ा, हांसी

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

मन जब तक है; तब तक दु:ख है

– स्वामी श्री सिद्ध स्वरूप

मन जब तक है, तब तक नर्क है। तुम मन के पार उठो।
अब जरा मन को सोने दो – तुम जागो।
न ही कोई निर्णय लो, न्यायधीश मत बनो। साक्षी बने बैठे रहो।
चलने दो विचारों के ट्रैफिक को। तुम बैठे रहो।
बुरे भले सब तरह के विचार निकलेंगे।
इससे तुम इतना भी सम्बन्ध मत रखो कि यह मेरा मन है।
तुम्हारा क्या लेना देना है? तुम मन नहीं हो।
तुम देह नहीं हो। तुम जरा भीतर से बैठ कर इसे देखते रहो।
एक दिन ऐसी घड़ी आएगी – पहले तो बड़ी कठिनाई होगी।
विचारों पर विचार आते जाएंगे, जैसे सागर में तिरंगे आती हैं।
कोई अन्त ही न मालूम होगा; बड़ा अंधेरा मालूम होगा।
लेकिन घबराना मत। एक बार देखने की आदत बन जाए अंधेरे को।
तो अन्धेरे को देखते देखते ही रोशनी पैदा होनी शुरू हो जाती है
एक गहरा परितोष, आनन्द, एक अपूर्व रस की धारा बहने लगेगी।

आत्मशक्ति को पहचानकर; कर्तव्य का पालन करो

✍ आचार्य श्री विद्यासागर

कौन कहां से आया है, कहां जाएगा?

आया है तो उसे जाना होगा, यह निश्चित है। आने जाने का प्रवाह निरंतर है। **महावीर भगवान इस प्रवाह के बीच तटस्थ ही नहीं; बल्कि आत्मस्थ रहे। तभी वे वास्तव में महावीर बने।**

उषा के बाद निशा और निशा के बाद उषा आएगी।

जो यह जान लेता है; वह दोनों के बीच सहजता से जीता है। **वस्तु तो वही है जो प्रतिक्षण उत्पन्न और नष्ट होते हुए भी; अपने स्वरूप में स्थित है। भगवान महावीर की यात्रा भी; अरुक थी, वह संसार में रुके नहीं। सतत् बढ़ते ही**

गए। जो इस प्रवाहमान जगत में निरंतर अपने आत्म-स्वरूप की प्राप्ति की ओर बढ़ रहा है और वृद्धिगत हो रहा है: वही वर्द्धमान है। उसका प्रतिक्षण नित नवीन वर्तमान है।

महावीर भगवान अपनी आत्मा में निरंतर प्रगतिशील थे।

वर्द्धमान चारित्र के धारी थे। जो शाश्वत है और जो कभी खो नहीं सकता; महावीर भगवान उसी के खोजी थे। उनका उपदेश भी यही था कि -

जो नश्वर है और मिटने वाला है; उसे पकड़ने का प्रयास हो या उसे स्थिर बनाने का प्रयास; दोनों व्यर्थ हैं। वास्तविक सुख तो अपनी अविनश्वर आत्मा को प्राप्त करने में है। जो सुख दुख के पार है, जो संयोग वियोग के पार है; उसका जन्म भी नहीं है, उसका मरण भी नहीं है और वह जो मृत्युंजयी है; वह हमेशा बना ही रहता है।

श्री कृष्ण ने (2.27) में यही तो समझाया था कि; जो कर्मयोगी है -वह जन्म मरण का विचार नहीं करता। वह तो जीवन मरण के बीच जो शाश्वत आत्मतत्व है; उसका विचार करता है और कर्तव्य में तत्पर रहता है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं शोचितुमर्हसि।।

In case, You 'Oh, Arjuna',
Think, souls take birth and die,
Death to him, who is born,
Re-birth to dead, inevitably apply.

जन्मे हुए मरते, मरे; निश्चय जन्म लेते कहीं।
ऐसी अटल जो बात है; उसकी उचित चिन्ता नहीं॥

अर्थात् जिसका जन्म है; उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु है; उसका जन्म भी अवश्य होगा। यह अपरिहार्य चक्र है। इसलिए हे अर्जुन! सोच में मत पड़। अपने धर्म का पालन करना ही इस समय श्रेयस्कर है।

हम शरीर की उत्पत्ति के साथ अपनी उत्पत्ति और शरीर के मरण के साथ अपना (आत्मा का) मरण मान लेते हैं; क्योंकि अपनी वास्तविक आत्म सत्ता का हमें भान ही नहीं है।

जन्म जयंती मनाना तभी सार्थक होगा; जब हम अपनी शाश्वत सत्ता को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य करेंगे और इसी की संभाल में अपना जीवन लगाएंगे।

भगवान महावीर स्वामी का कहना था; मात्र जन्म ही सत्य नहीं है और न मरण ही सत्य है। सत्य तो वह ही है; जो जन्म मरण दोनों से परे है। जो व्यक्ति मरण से डरता है, वह कभी ठीक से नहीं जी सकता। लेकिन जो मरण के प्रति निश्चिंत है, मरण के अनिवार्य सत्य को जानता है; उसके लिए मरण भी प्रकाश बन जाता है। वह साधना के बल पर मृत्यु पर विजय पा लेता है। हमें आत्मा के रहस्य को समझने के लिए; अनेकांत, अहिंसा और सत्य की दृष्टि की आवश्यकता है। यदि एक बार यह ज्योति (आंख) मिल जाए;

तो मालूम होगा कि हम व्यर्थ चिंता में डूबे हैं। हर्ष विषाद और इष्ट अनिष्ट की कल्पना व्यर्थ है। आत्मा अपने स्वरूप में शाश्वत है।

भगवान महावीर अपने स्वभाव की ओर देखने वाले थे। वे संसार के बहाव में बहने वाले नहीं थे। हम इस संसार के बहाव में निरंतर बहते चले जा रहे हैं और बहाव के स्वभाव को भी नहीं जान पाते हैं।

जो बहाव के बीच आत्मस्थ होकर रहता है; वही बहाव को जान पाता है।

आत्मस्थ होना यानी अपनी ओर देखना। जो आत्मगुण अपने भीतर है; उन्हें भीतर उतरकर देखना। अपने आपको देखना, अपने आपको जानना और अपने में लीन होना - यही आत्मोपलब्धि का मार्ग है। आत्मा अनंत है।
भगवान महावीर ने अपने आत्मबल द्वारा अपना कल्याण किया और हमारे लिए कल्याण का मार्ग बताया। लेकिन हम इस जन्म मरण के चक्र से स्वयं को निकाल नहीं पाए। हमारा जीवन; धर्म अमृत की वर्षा होने के उपरांत भी अमृतमय नहीं हुआ। भीतर तक झांकने के लिए अंतर्मन की निर्मलता चाहिए। अपने अंतर्मन को निर्मल बनाने का प्रयास करें। पापों से मुक्त होकर, कलुषित भावों को छोड़कर आत्मस्थ होने का प्रयास करें।

श्वेताश्वतरोपनिषद के अनुसार -

उस परमात्मा को जानकर व्यक्ति मृत्यु को जीत लेता है। मुक्ति प्राप्ति का इससे भिन्न कोई उपाय नहीं है। ❑

सुखी जीवन का रहस्य

✍ श्री राकेश गर्ग, (98967-89678)

प्रत्येक जीव; सुखी होने के लिए प्रयत्न कर रहा है। परन्तु उसे यह पता नहीं है कि; सुख का आधार कहां है? समाज में गलत शिक्षा के कारण भी अज्ञानता है। आज की शिक्षा यह तो बताती है कि प्रत्येक विषय को समझा जाय। बुद्धि का विकास किया जाए।

लेकिन मन को खुश रखने के लिए या मन के विकास की शिक्षा समाज नहीं दे पाता।

नियमित ध्यान द्वारा मन का विकास किया जा सकता है। मन जब ध्यान द्वारा अपना मूल्य जगत, यानि अपने ही सूक्ष्म स्तर (जीवात्मा) से जुड़ता है - तब मन वो शक्ति प्राप्त करता है - जो उस का विकास करती है।

इस शक्ति को भगवान की शक्ति भी कहते हैं। यह शक्ति मन को अन्तर्मुखी होने से मिलती है।

संसार के किसी भी बाहरी बाजार में इस शक्ति को नहीं खरीदा जा सकता। यह शक्ति केवल मन को आन्तरिक क्षेत्र में जाने से ही मिल सकती है।

यह शक्ति मन की अपनी शक्ति है।

यह मन को खुश रखने की शक्ति है। ध्यान के दौरान जब मन में यह शक्ति पिरोती है - तब यही शक्ति क्रिया के समय भी बनी रहती है। यानि मन खुश होकर सभी क्रिया करता है। जीवन में सफलता देने वाली यही शक्ति है।

इसी को गीता (2.48) में कहा गया है कि

भगवान में स्थित हो कर कार्य करना।

जो इस ध्यान का अभ्यास रोज करता है; उसका जीवन निश्चित रूप से विकास की ओर बढ़ता है। विकास के मार्ग पर जो रुकावटें हैं - वो हटने लगती हैं।

भगवान का निवास मन में ही है।

इसके अतिरिक्त दूसरी जगह खोजना मुश्किल है। इसलिए ध्यान प्रत्येक साधक को अवश्य और नियमित करना चाहिए। ❑

जैसा जिसका संग; वैसा उसका गुण

—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

आग के पास बैठने से गर्मी मिलेगी और पानी के पास बैठने से ठण्डक मिलेगी। योग (Meditation) के द्वारा परमात्मा के पास बैठने से परमात्मा के गुण-अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड आनन्द प्राप्त होते हैं।

मनुष्य दिन भर शरीर, बुद्धि और मन द्वारा कार्यरत रहता है और रात को थक हार कर सो जाता है। सोते समय शरीर और बुद्धि आराम करते हैं। परन्तु सारा दिन सक्रिय रहने के कारण मन की सक्रिय रहने की आदत; बिगड़ जाती है। इसी कारण मन सोते समय भी सक्रिय रहने लगता है; ऊट पटांग विचारों में व्यस्त रहता है और मनोरोग अथवा Depression का कारण बनता है।

इस रोग का एक मात्र उपाय; उपासना (Meditation) है। उपासना का सन्धि विच्छेद है - उप + आसन। उप का अर्थ है - निकट; और आसन का तात्पर्य है - स्थान। अतैव उपासना; परमात्मा के निकट सत्संग का एक साधन है।

यह ब्रह्म विद्या; सारी विद्याओं का राजा है। सुनना आसान, करना आसान और कोई परिश्रम नहीं; प्रत्यक्ष फल मिलता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं;

उठो, जागो और लक्ष्य को प्राप्त हो।

जागो का मतलब; योग (Meditation) के द्वारा जागना है। यह विद्या; वेद और विज्ञान से परिमाणित है। भगवान की शक्ति के द्वारा मन के प्रतिकूल विचार नष्ट हो जाते हैं; और अनुकूल विचारों को भगवान की शक्ति मिलती है। यानि लक्ष्य पूरे होते हैं। यह सबसे सर्वश्रेष्ठ साधन है। इससे अपने आप 'होनी की शक्ति' बढ़ जाती है। मन में दान, पुण्य, सेवा और क्षमा आ जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और शोक कम हो जाते हैं। भगवान महावीर कहते हैं

मनुष्य जन्म से महान नहीं होता, कर्म से होता है।

परमात्मा का योग; महान बनने का तरीका है। अच्छा काम करने के लिए पल भर की देरी न करो। बुरा काम करने से पहले; सौ बार सोच लेना चाहिए। वेद व्यास (ध्यान द्वारा मन का विकास) में कहते हैं;

हे मनुष्यो धर्म का सार सुनो; सुनकर धारण करो।

ध्यान द्वारा मन का विकास; मन में शान्ति होगी। मन में खुशी आएगी। मन में दूसरों के प्रति विरोध कम होगा। मन का डर खत्म होगा। मन के नकारात्मक विचार खत्म होंगे; और सकारात्मक विचार बनेंगे। मन की हीन भावना खत्म होगी। मन का उतावलापन खत्म होगा। मन शक्तिशाली बन जाएगा। मन में गुस्सा कम होगा। पड़ोसी अच्छे लगेंगे। इसलिए मनोरोग अथवा Depression से बचेंगे।

बुद्धि का विकास : बुद्धि तेज हो जाएगी। पढ़ने की योग्यता बढ़ जाएगी। पाठ जल्दी याद होगा। आचरण अच्छा हो जाएगा। चरित्र भी अच्छा हो जाएगा। व्यर्थ की बातें नहीं होंगी। मूर्खता खत्म हो जाएगी। अपने आप में आप सहज रहोगे। रोजगार में वृद्धि होगी। भगवान में विश्वास हो जाएगा।

शरीर का विकास : शरीर में ऊर्जा शक्ति मिलती है। शरीर की थकावट बहुत जल्दी खत्म होती है। शरीर हल्का फुल्का हो जाता है। शरीर की बीमारी खत्म हो जाती है। शरीर में काम अधिक करने की शक्ति आती है। शरीर का तनाव तथा बी.पी. ठीक हो जाते हैं। नींद जल्दी आती है और थोड़ी नींद की जरूरत पड़ती है।

ध्यान अनिवार्य क्यों ?

जहां जीवन है; वहां एक अनुभव करने वाला है। इसे मन कहते हैं।

मन को अनुभव करने की शक्ति चाहिए। अनुभव करने की शक्ति को चेतना (Consciousness) कहते हैं।

मन की चेतना का विकास होना; अनिवार्य है।

इस चेतना के विकास में ही; ज्ञान है। अन्दर की चेतना के विकास में अन्दर का ज्ञान है और बाहर की चेतना के विकास में बाहर का ज्ञान है।

सुखी जीवन के लिए दोनों ज्ञान अनिवार्य हैं।

समाज में मनुष्य बाह्य जगत की चेतना का विकास तो कर रहा है; लेकिन आन्तरिक जगत की चेतना के विकास का रास्ता खो चुका है। अन्दर का ज्ञान तो बाहर के ज्ञान की नींव (Foundation) है।

सही ज्ञान वही है; जो जीवन को प्रसन्नता दे सके।

बाहर के ज्ञान की नींव कमजोर होने के कारण, बाह्य जगत की चेतना का विकास हमारे मन को जीवन की प्रसन्नता देने में असमर्थ होता जा रहा है। असमर्थता को दूर करने के लिए ध्यान का अभ्यास (Meditation) अनिवार्य है।

ध्यान का ध्येय; आन्तरिक चेतना का विकास है।

अन्दर की दुनियां में मन के विचरण के आधार पर; मनुष्य को ब्रह्म के तत्व का ज्ञान होने लगता है। यह ज्ञान बाह्य जगत के अनन्त पहलुओं के ज्ञान का आधार है। इस आधार की कमी में बाहर के जगत के किसी भी पहलू का ज्ञान, जीवन को प्रसन्न नहीं बना पाएगा।

जब मन आन्तरिक जगत में विचरण करता है, तब आन्तरिक जगत के तत्व से उसका सम्पर्क होता है। इस सम्पर्क की अनुभूति को आनन्द (Bliss) कहते हैं। मन स्वभाव से सुख का भूखा है।

बाह्य जगत का सुख मन के सुख की तड़पन बढ़ाता है और आन्तरिक सुख मन के सुख की भूख मिटाता है। केवल प्रसन्न व्यक्ति ही; सारे बाह्य सुखों का भोग करने में सक्षम है। जो प्रसन्न नहीं है; वह सुख का भोग करने में सक्षम नहीं है। प्रसन्नता मन के आन्तरिक जगत में विचरण अर्थात् ध्यान की देन है।

आनन्द में मन के लीन होने को ईश्वर का ध्यान कहते हैं।

आनन्द और सुख एक-दूसरे के विलोम (Opposite) हैं। बाह्य जगत के सुख केवल कुछ करने और कुछ न करने से मिलते है। आनन्द तो केवल तब उभरेगा, जब हमारा मन 'करने और न करने' से परे हो जायगा। या यह कहें कि बुद्धि के अनुशासन से परे हो जायगा। उसकी पहचान उन क्षणों की प्रयासहीनता है। प्रयास केवल उन क्षणों में सम्भव है; जब मन बाह्य जगत के किसी पहलू में विचरण करता है।

बुद्धि के अनुशासन में प्रयास रहता है।

आन्तरिक जगत में मन के विचरण में प्रयासहीनता है। इन क्षणों में बुद्धि आराम करती है। आनन्द उभरता है; और मन आनन्द में लीन हो जाता है। जो इस रास्ते पर नहीं चलते, वे भी रात्रि में विवश होकर सो जाते हैं। सोते समय कुछ नहीं करते। बुद्धि का अनुशासन समाप्त हो जाता है। जब सोकर उठते हैं तो; जितनी गहरी निद्रा के बाद उठते हैं, उतने ही प्रसन्न चित्त दिखते हैं।

सोते समय प्रयासहीनता की जिस अवस्था में मन रहता है; यदि प्रयासहीनता की उसी अवस्था को जागृत अवस्था में प्राप्त कर ले; तो आनन्द तीव्रता से उभरने लगेगा। यही ईश्वर का ध्यान होगा।

ध्यान की विधि

हमें किसी एकान्त जगह में आंख बन्द करके, केवल एक बार ईश्वर का कोई भी नाम स्मरण करके, मन को स्वतन्त्र (Relax) छोड़ देना है। ईश्वर के नाम में ध्यान नहीं लगाना है। एकाग्रता नहीं करनी है। ऐसा करने से ऊल जलूल, उटपटांग और बेवकूफी के विचार मन में उठने लगेंगे। यह इस बात का प्रमाण है कि; बुद्धि का अनुशासन समाप्त हो गया है।

ये क्षण ही ईश्वर के ध्यान के क्षण हैं।

जैसे ही मन में फिर से नियंत्रित विचार आने लगें; एक बार फिर ईश्वर का नाम स्मरण करके, दोबारा मन को स्वतन्त्र छोड़ दें। इस तरह लगभग 30 मिनट तक बैठे रहें। यदि बीच में आंख खुल जाय और आप घड़ी में देखें कि समय पूरा नहीं हुआ है; तो फिर आंख बन्द करके बैठ जायं। आपके शरीर का कोई भाग पृथ्वी या दीवाल को न छुए अन्यथा प्राप्त शक्ति Earth हो जायेगी। पीठ और दीवाल के बीच में तकिये का प्रयोग किया जा सकता है। सिर का टेक न लगाएं। ध्यान के समय यदि सिर अपने आप झुक जाये, तो उसका बुरा न मानें। यदि बैठे-बैठे नींद आ जाये, तो भी ठीक है।

नींद टूटने के बाद ध्यान कर लेना चाहिए।

ध्यान के बाद थोड़ी देर के लिए लेट जाना चाहिए। यदि लेटने पर नींद आ जाय तो यह एक अच्छा चिह्न है। यदि लेटने पर नींद न आए तो; जैसे ही लगे कि शरीर की थकावट दूर हो गई; उठकर अपने नित्य के कामों में व्यस्त हो जाना चाहिए।

यदि बैठने में प्रयास होने लगे, तो भी लेट जाना चाहिए।

अस्वस्थता की अवस्था में ध्यान नहीं करना चाहिए।

अस्वस्थता के समय बैठने में, प्रयास होगा। यदि आपके पैर में गठिया की बीमारी है और बैठने में असमर्थ हैं; तो कुर्सी पर बैठकर भी ध्यान कर सकते हैं। नंगे पैर से जमीन पर स्पर्श हो तो रबड़ के जूते और चप्पल का प्रयोग किया जा सकता है। बस या गाड़ी में भी ध्यान कर सकते हैं। दिन में लगभग तीन बार ध्यान करना चाहिए। कभी-कभी छूट जाने का, कोई खराब असर नहीं होता।

प्रसन्नता, सुख का आधार

प्रसन्नता सुख का आधार है। जहां जीवन है; वहां कमाना और खर्च; दोनों ही अनिवार्य हैं। यदि हम बिना कमाए खर्च करेंगे तो, कर्ज पर रहेंगे। यदि हम बिना आनन्द को उभारें, जीवन के सुख में लीन हो जाएंगे तो जीवन के सुख को भोगने की सामर्थ्य धीरे-धीरे खोते चले जायेंगे।

सुख के साधन तो रहेंगे; लेकिन सुख को भोगने की शक्ति समाप्त हो जाएगी। यही जीवन का दुःख है।

कमाई को जीवन के किस पहलू पर खर्च करें; उस पहलू का कमाने के तरीके से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार प्रसन्नता को उभार कर जीवन के किस पहलू का सुख भोंगें, उस पहलू की प्रसन्नता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस सत्य को ध्यान की शिक्षा की कमी के कारण, मनुष्य समझ नहीं पा रहा है।

खर्च ही नहीं करना है; तो हम कमाकर क्या करेंगे?

यदि सुख का भोग करना ही नहीं है; तो सुख के भोग की शक्ति जगाकर क्या करेंगे? खर्च, जीवन के किसी भी पहलू पर हो सकता है। इसी तरह

मन में प्रसन्नता उभारने वाला, हर तरह की क्रियाओं के सुख के भोग की क्षमता रखता है।

जीवन में ऐसा भी देखा जाता है कि, कुछ लोग कमाने में इतना व्यस्त हो जाते हैं कि खर्च करने के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता। खर्च केवल उनके सम्बन्धी करते हैं। इसी प्रकार से हमारे समाज में बहुत से ऐसे भी महात्मा पाए जाते हैं, जो अपने द्वारा कमाया हुआ आनन्द स्वयं (सुख भोग पर) खर्च नहीं करते। उनके

द्वारा कमाया हुआ आनन्द, जो कि वायुमण्डल में पिरो जाता है; उनके सम्बन्धी या समाज के सुख भोग में खर्च हो जाता है।

कोई व्यक्ति ध्यान का रास्ता पकड़ कर अपने जीवन में आनन्द उभार कर, अपने सुख के भोग में खर्च करेगा, या समाज के सुख भोग में उसे खर्च होने देगा; यह व्यक्ति विशेष की बात होगी। लेकिन लेखक तो मात्र सही सिद्धान्त (Theory) बताना चाहता है। ❑

(1936-2009)

अध्यात्म का क्षेत्र; शरीर के अन्दर

✍ डॉ० शम्भूनाथ

आत्मा और जीवात्मा दोनों ही शरीर के अन्दर हैं। अर्थात् अध्यात्म का क्षेत्र शरीर के अन्दर है। अध्यात्म का सन्धि विच्छेद है - अधि + आत्मा। अधि का अर्थ है; सीमा। यद्यपि आत्मा असीम है; फिर भी आध्यात्म शरीर के अन्दर ही है। समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं-सूर्य के प्रकाश और गर्मी से पूरा ब्रह्माण्ड प्रकाशित है। फिर भी हम यही कहेंगे कि सूर्य देवता तो सूर्य लोक में विद्यमान हैं। इसी प्रकार से

> **आत्म शक्ति का प्रभाव भले ही सर्वव्यापी हो, परन्तु आत्मा का निवास तो मात्र शरीर के सूक्ष्मतम् भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) में है; और जीवात्मा का निवास भावों के क्षेत्र में है। इसीलिए पूर्ण शरीर के क्षेत्र को अध्यात्म का क्षेत्र माना जाता है। आत्मशक्ति सर्वव्यापी है।**

यदि हम अपने शरीर के अन्दर और शरीर के बाहर का निरीक्षण करें; तो आसानी से ज्ञात हो जाता है कि अध्यात्म अन्दर का क्षेत्र - प्रयत्नों से परे है।

> **शरीर के अन्दर के यन्त्र, मात्र आत्मशक्ति से संचालित होते हैं। आत्मशक्ति से परे किसी का नियन्त्रण संभव नहीं; विशेष रूप से आन्तरिक जगत में तो बिल्कुल नहीं।**

हमें अनुभव है कि हमारी पाचन क्रिया, रक्त संचार और दिल के धड़कन की गतियां; स्वत: मेहनत और आराम के समय भी नियंत्रित रहती हैं। आवश्यकता

अनुसार इन यन्त्रों को आत्मशक्ति; आत्मक्षेत्र से मिलती रहती है। हमारा नित्य का अनुभव है कि; मेहनत करते-करते हमारी दसों इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और आराम (निद्रा) करने से अपने आप इन इन्द्रियों सम्बन्धित यन्त्रों को आवश्यकता के अनुरूप आत्म शक्ति मिल जाती है; और अगले दिन सभी यन्त्र फिर से संचालित हो जाते हैं।

> **आन्तरिक क्षेत्र उस क्षेत्र को कहते हैं, जो प्रयत्न से परे होने के कारण; बुद्धि और इन्द्रियों से भी परे होते हैं।**

अत: पिंड, आत्मशक्ति का संसार है। यह बुद्धि और इन्द्रियों से परे है। यहां किसी मनुष्य का 'मैं' क्रियाशील नहीं रहता। यही संत कबीर ने साधकों को समझाने के लिए बताया है कि पिण्ड ही हरि का संसार है; और यहीं हरि का निवास है।

जब 'मैं' था, तब हरि नहीं।
जब हरि था, तब 'मैं' नाहीं॥

ऊपर की पंक्तियां हमें सुझाती हैं कि जीवात्माओं का भ्रमण दो क्षेत्रों में होता है - पिंड के अन्दर और पूरे ब्रह्माण्ड में।

> **इन दो क्षेत्रों में मन के भ्रमण को कर्म कहा गया है। यही कर्म की परिभाषा है।**

शरीर के बाहर का क्षेत्र प्रयत्नों का क्षेत्र है और आन्तरिक जगत; प्रयत्नों से परे का क्षेत्र है। जीव; आत्म शक्ति का भंडार है और परमात्मा, आत्म शक्ति का सागर है।

परमात्मा पूर्ण है और जीवात्मा अपूर्ण है।

इसी कारण प्रकृति में प्रावधान है कि जीवात्मा और परमात्मा का निवास इतना अधिक समीप है कि सृष्टि की कोई दूसरी चीज; जीवात्मा के इतने समीप हो ही नहीं सकती।

> **पूरा ब्रह्माण्ड आत्म शक्ति से संचालित है। अर्थात् ब्रह्माण्ड के संचालन में आत्मशक्ति का व्यय होगा। और ब्रह्माण्ड का संचालन; मात्र जीवात्माओं के ब्रह्माण्ड में विचरण द्वारा होगा। आत्मशक्ति के व्यय से जीवात्मा थकावट का अनुभव करती है। ज्यों ज्यों थकावट बढ़ती है; परिश्रम का अनुभव भी बढ़ता है।**

इसके विपरीत ज्यों ज्यों जीवात्मा थकावट मिटाने के लिए, शरीर के अन्दर विचरण करती है; त्यों त्यों वह अपने में आत्म शक्ति पिरोती है; और इस आत्मशक्ति पिरोने से थकावट मिट जाती है।

हमने देखा कि अन्दर के क्षेत्र में ही आत्म शक्ति का सागर है।

जीवात्मा को, वहां से शक्ति लेकर ब्रह्माण्ड का संचालन करने हेतु, इन्द्रिय जगत में भ्रमण करना भी अनिवार्य है। जो जीवात्मा; जिस अनुपात में आत्मशक्ति से तर बतर होगी, उसी अनुपात में वह प्रयत्न रहित होकर सृष्टि संचालन में अपना योगदान अधिक से अधिक देने में समर्थ होगी।

प्रयत्न या परिश्रम; क्रिया क्षेत्र के तत्व हैं। ये दोनों ही आत्म शक्ति द्वारा नियन्त्रित हैं। कहने का अर्थ यह है कि मात्र आत्म-शक्ति की कमी में; ये क्रियाशील होंगे। आत्म शक्ति इन दोनों के अधीन नहीं है। इसीलिए आत्म शक्ति का स्वरूप, 'होनी' है। आत्मशक्ति या होनी में संसार के समस्त क्रियाओं का ज्ञान है।

प्रकृति की वे क्रियाएं, जो बुद्धि से परे हैं; वे भी आत्म शक्ति के नियन्त्रण में 'होनी' के माध्यम से होती रहती हैं।

उदाहरण के लिए; वनस्पति का विस्तार अनन्त है। किस पेड़ का तना, डाली, पत्ती, फूल और फल कैसा होंगे? उनकी रचना 'होनी की शक्ति' के माध्यम से आत्मशक्ति द्वारा नियन्त्रित होगी।

ब्रह्माण्ड में, न मालूम कितनी ऐसी क्रियाएं हमें अनुभव होती है? जो बुद्धि से परे हैं। जैसे आकाश में बादलों की गतिशीलता, पृथ्वी का अनन्त काल से चक्र में घूमना, आकाश में अनन्त तारों की गतियां और मौसम का बदलाव आदि। ऐसे कितनी ही उदाहरण हैं? ये सब आत्म शक्ति के ही नियन्त्रण में रहते हैं।

अनन्त तरह के पिंडों में स्थित यन्त्रों का संचालन आत्म शक्ति द्वारा संचालित होता है। और ऐसी सारी क्रियाओं का ज्ञान; आत्म ज्ञान के अन्तर्गत 'होनी' द्वारा ही होता है। 'करनी' का क्षेत्र तो; मात्र ब्रह्माण्ड है।

बुद्धि; इन्द्रियों को नियंत्रित करने की शक्ति है। इस प्रकार बुद्धि (करनी) के ज्ञान

का क्षेत्र; और होनी के ज्ञान (आत्म ज्ञान) का क्षेत्र भिन्न भिन्न हो जाता है।

करनी का क्षेत्र का संचालन; आत्म शक्ति के व्यय द्वारा होता है।

हम देख चुके हैं कि ब्रह्माण्ड की क्रियाओं का क्षेत्र; आत्मसत्ता द्वारा ही संचालित होता है। अतः जिस प्रकार समाज में मनुष्य को आय और व्यय सम्बन्धी क्रियाओं से छुटकारा नहीं मिलता; उसी प्रकार पिंड में जीवात्मा को आत्म क्षेत्र (अर्थात् भावातीत क्षेत्र से आत्म शक्ति मन में पिरोने सम्बन्धी कर्मों; और इन्द्रियों के संचालन और वायुमण्डल की शुद्धि सम्बन्धी कर्मो), से छुटकारा नहीं मिलता।

यही जीवात्मा का जीवन है।

स्वाभाविक है कि जीवात्माएं दो प्रकार की होंगी।

1. एक वे जो क्षीर सागर से आत्म शक्ति अपने में पिरोने में कुछ अधिक समय देंगी।

2. दूसरी वे जो इन्द्रिय जगत में भ्रमण करते हुए, इन्द्रिय सुख के भोग में इतनी लिप्त हो जाएंगी कि भोग करते-करते जब तक वे थकावट के कारण विवश होकर निद्रा की व्यवस्था में पिंड में भ्रमण करने की अवस्था को नहीं प्राप्त हो जाएंगी - तब तक स्वेच्छा से जागृत चेतना में ब्रह्म शक्ति के क्षेत्र में भ्रमण करने के लिए नहीं मुड़ेंगी।

दूसरी तरह की जीवात्माएं। दु:ख की ओर अग्रसर होने लगेंगी। उनका दु:ख; तब तक बढ़ता जाएगा - जब तक वे आत्म क्षेत्र में विचरण की कला (Meditation) को प्राप्त न हो जाएं; और स्वेच्छा से जागृत चेतना द्वारा आत्म क्षेत्र में भ्रमण करने का अभ्यास आरंभ न कर दें।

पहली तरह की चेतनाएं सुखी जीवन की ओर अग्रसर होती हैं। धीरे धीरे उनमें 'होनी की शक्ति' बढ़ने लगती है और उनका जीवन परिश्रम से दूर होने लगता है। अध्यात्म कहता है कि; सारे देवी देवता पिंड के अन्दर हैं।

हम निरीक्षण कर चुके हैं कि पिंड के अन्दर की दुनिया 'होनी की दुनियां' है। जो चेतना; आत्म शक्ति से जितना परिपूर्ण है; सृष्टि का संचालन उतना ही बड़ा योगदान देने में सक्षम हो जाता है।

करनी के माध्यम से ब्रह्माण्ड का संचालन कठिन होने के साथ साथ, संचालन में योगदान की बजाये, संचालन में कठिनाइयां उत्पन्न करने लगती हैं। इसे हम संत तुलसीदास जी के शब्दों में समझ सकते हैं;

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानो भाई॥

यह चौपाई, हमें गलतफहमी के बारे में संकेत करती है, कि

इन्द्रियों का क्षेत्र ही; ब्रह्माण्ड का क्षेत्र है।

यही करनी का क्षेत्र है। सन्त तुलसी दास के अनुसार

इस क्षेत्र की चेतना में रहकर, इस क्षेत्र में व्यस्त व्यक्तिों के मन में भ्रांतियां अधिक हैं।

ऐसा मनुष्य; जीवन के सत्य के क्षेत्र में अपना योगदान कैसे दे सकता है? इसके विपरीत, देवी देवता - जिनका निवास स्थान पिंड में है; वे तुलनात्मक दृष्टि से, अधिक पूर्ण हैं। यही कारण है कि वे 'होनी की शक्ति' के द्वारा ब्रह्माण्ड के संचालन में अपना योगदान देने में सक्षम हैं। जीवन की अनुभूतियां भी हमें बताती हैं कि पृथ्वी, सूर्य, वायु, बादल, चन्द्रमा और नभ के अनन्त तारागण (देवता), ब्रह्माण्ड के संचालन में 'होनी' के माध्यम से, अनन्त काल से अमूल्य योगदान देते आ रहे हैं।

करनी का क्षेत्र; हर क्षण बदलने वाला क्षेत्र है।

करनी के क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों का जीवन भी, हर क्षण बदलता रहता है। जीवात्माएं अपने जीवन काल में कभी उत्थान की ओर अग्रसर रहती हैं; और कभी पतन की ओर।

मात्र उत्थान की ओर अग्रसर होने वाली जीवात्माएं; अपने मन में होनी की शक्ति पिरोती चली जाती हैं; और 'होनी की शक्ति' से पूर्ण त्रिदेव (ब्रहा, विष्णु और महेश) ऐसी जीवात्माओं के बदलते हुए जीवन में, अपना योगदान देते हैं।

1) वर्तमान जीवन को समाप्त करने की परिस्थितियां; जीवन में 'होनी की शक्ति' ही उत्पन्न करती हैं। ऐसा **महेश** द्वारा होता है।

2) वर्तमान जीवन समाप्त होने के बाद **ब्रह्मा** बदलते हुए जीवन की योजनाओं से सम्बन्धित परिस्थितियां जीवात्माओं के जीवन को प्रदान करती हैं।

3) यह बदलते हुए जीवन का रख रखाव **विष्णु** द्वारा होता है।

यह चक्र पूरा होने पर, उत्थान पर चलने वाली जीवात्माएं अनुभव करने लगती हैं कि जो कुछ हुआ; अच्छा ही हुआ। जो कुछ भी हुआ; उससे उनके जीवन में संतोष बढ़ा।

हम इस कहावत से परिचित है कि :-

गोधन, गजधन, वाजिधन और रत्न धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

यह प्रसिद्ध है कि समय चक्र, (सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलयुग), चार युगों में बंटा है। पुराणों में इन चारों युगों से सम्बन्धित इतिहास मिलते हैं।

यह इतिहास पृथ्वी का इतिहास है।

इस इतिहास का आरम्भ तब हुआ; जब तिथियां आरंभ नहीं हुई थीं। इसीलिए पृथ्वी का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने तिथियों का वर्णन नहीं किया। जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटनाएं वे हैं - जो मनुष्य के जीवन पर अपना प्रभाव डाल सकें। इसलिए पुराण (जिसे लेखक पृथ्वी का इतिहास मानता है) में ऐसी घटनाओं के उल्लेख पर अधिक महत्व दिया गया, जो मनुष्य जीवन पर अपना प्रभाव डाल सकें; और उसे अपने को बदलने में प्रयोग कर सकें।

आजकल कलयुग का दौर चल रहा है।

कलयुग मशीनों का युग है। मशीनों का निर्माण मनुष्य की बुद्धि करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि; इस युग में अपनी अपनी बुद्धि को तीव्र करने की होड़ लगी है। आत्म ज्ञान की शिक्षा का लोप हो गया है। इसी के साथ साथ समाज में आत्म शक्ति घटती चली गई। जीवन दु:खों की ओर मुड़ता चला गया।

बुद्धि का क्षेत्र, इन्द्रियों का क्षेत्र है। अत: बुद्धि को तीव्र करने के लिए, मन का इन्द्रिय जगत में भ्रमण बढ़ने लगा।

फलस्वरूप मन की 'होनी की शक्ति', घटने लगी और 'करनी की शक्ति' बढ़ने

लगी। ज्यों ज्यों 'करनी' बढ़ी; त्यों त्यों मन पर 'लगाम रूपी बुद्धि', अधिक क्रियाशील हुई। अधिक से अधिक मनुष्यों का मन पराधीन रहने लगा।

''पराधीन सपनेहुँ सुख नाही''

इसलिए सामाजिक प्राणी दु:खों से ग्रस्त होने लगे। वृद्ध मनुष्यों को अपना बचपन भूला नहीं है। उनकी स्मृति प्रमाण है कि, उनके जीवन में ही मनुष्य की क्रियाएं पचासों गुणा बढ़ चुकी हैं। वे यह भी जानते हैं कि उनके बचपन में भले ही समाज में इतना पैसा नहीं दिखता था, जितना आज दिखता है। परन्तु समय का अभाव नहीं था।

आज हर व्यक्ति धन अर्जित करने में; समय से कंगाल है।

जीवन में समय की कमी; यातायात में अनेक दुर्घटनाओं का कारण बन रही है। इन दुर्घटनाओं से पीड़ित व्यक्तियों की पीड़ा हटाने के साधन उपलब्ध हैं, परन्तु कम से कम समय में अधिक से अधिक धन अर्जित करने की अभिलाषा के कारण इन साधनों का सदुपयोग कम; और दुरुपयोग अधिक होता है। ये साधन पीड़ा कम करने की बजाय; और अधिक पीड़ा बढ़ाने में योगदान दे रहे हैं। लेखक यह कहना चाहता है कि

आज के क्रिया क्षेत्र के लक्ष्य के अनुसार फल न होकर, हर क्रिया का फल लक्ष्य के विपरीत हो रहा है। इसका मूल कारण, इन्द्रियों के क्षेत्र में 'होनी की शक्ति' की कमी है।

जीव; ईश्वर अंश होने के कारण, होनी के क्षेत्र का अस्तित्व है। जीव को सुखी बनाए रखने का दायित्व; आत्म शक्ति अर्थात 'होनी' का है। ऊपर हमने 'होनी' और 'करनी' की शक्ति के विषय में जो कुछ भी समझा; उससे यह स्पष्ट है कि

करनी, जीवन को सुखी रखने में सक्षम नहीं है।

करनी; जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम नहीं है। जीव को 33 कोटि देवताओं से अपनी अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए जो कुछ भी प्राप्त होता है – वह उसे 'करनी' नहीं दे सकती।

अत: विवश होकर होनी को करनी के क्षेत्र में जीवात्माओं का जीवन सुखी बनाए रखने के लिए, प्रवेश करना पड़ेगा।

यही कारण है कि होनी के क्षेत्र में करनी का अनुभव असम्भव है। करनी के क्षेत्र में होनी का प्रवेश; करनी और होनी के बीच, संघर्ष का कारण है। यह संघर्ष अनन्त काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता ही रहेगा। संभावनाएं दो हैं – कभी होनी का पलड़ा भारी होगा तो कभी करनी का पलड़ा भारी हो जाएगा। कभी संघर्ष में दोनों की स्थिति बराबर की रहेगी।

रामायण में राम और रावण के बीच संघर्ष में भी ऐसा ही दर्शाया है।

जब होनी की जीत, करनी पर होगी; तभी समय चक्र में सतयुग का प्रवेश होगा। हारी हुई करनी; तब भी चुप नहीं बैठेगी। और सतयुग के समस्त ज्ञानी भी, सतयुग को हमेशा बनाए रखने में असफल रहेंगे। धीरे धीरे त्रेता युग और द्वापर युग का प्रवेश होगा।

त्रेता में राम और रावण की लड़ाई और द्वापर में महाभारत; हमें स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि संघर्ष करने वाले एक दूसरे से कम नहीं हैं।

अर्थात् त्रेता और द्वापर में होनी और करनी, दोनों एक दूसरे के बराबर होंगे। धीरे धीरे कलयुग का प्रवेश होगा; और 'करनी' का पलड़ा 'होनी' से भारी हो जाएगा। परन्तु जिस प्रकार से सतयुग में करनी की हार तो हुई; परन्तु वह समाप्त नहीं हुई। हार होते हुए भी उसने हार मानी नहीं। इसी प्रकार घोर कलयुग आने तक 'करनी' की जीत तो होगी, लेकिन 'होनी' समाप्त नहीं होगी। हारने के बावजूद, 'होनी' फिर से उठने का प्रयत्न करेगी। धीरे-धीरे काल चक्र सतयुग की ओर अग्रसर होगा। यह कहावत प्रसिद्ध है :-

हरि अनन्त हरि कथा आनन्ता

ईश्वर महिमा अपरम्पार।

अर्थ यह है कि; बुद्धि इसे समझने में सक्षम नहीं है। बहुधा कुछ दुखियारी मनुष्यों के मन में यह प्रश्न उठता है कि; यदि परमात्मा दु:ख और सुख दोनों न बनाता, तो उसकी क्या हानि होती? इस लेख से समझ में आता है कि ईश्वर का द्वैत जगत की स्थापना; जो अनन्त काल तक चल सके, की इच्छा अधूरी रह जाती।

समय चक्र का निर्माण न होता

और असीम, समय की सीमाओं में बंध जाता।

यह असीम को कभी भी स्वीकार नहीं हो सकता। अत: अनन्त काल तक चलने वाले ब्रह्माण्ड (द्वैत जगत) के निर्माण के लिए; सुख और दु:ख दोनों का प्रावधान रखना – ईश्वर के लिए अनिवार्य था। ❑

ध्यान के जरिये; मिटाएं अकेलापन

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (099918-46415)

कई बार अकेलापन सबसे बड़ी समस्या बन जाती है।

यह समस्या किसी उम्र या स्थिति में आ जाती है। इसके कई कारण बन सकते हैं- जैसे किसी के साथ धोखा हो जाए। मन पसन्द काम न हो। शादी के बाद; और कई बार लम्बी गृहस्थी जीने के बाद भी इसकी शिकायत अकसर होती है। जब जीवन साथी छूट जाता है – तो आदमी टूटने लगता है। बुढ़ापे में तो जीवन बोझ लगने लगता है। अत: वह मृत्यु को बुलाने लगता है।

कारण कुछ भी हो ?

जब अकेलापन सताने लगे – तो इसका इलाज स्वयं ही करना पड़ता है। इसको दूर करने के दो मार्ग हैं; एक तो सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त हो जाओ कि समय का पता ही न चले। कुछ समय के लिए यह मार्ग ठीक है; पर स्थाई नहीं है। अगर स्थाई इलाज करना है – तो ध्यान ही पक्का व सच्चा मार्ग है; जिससे वर्तमान स्थिति तो सुधरेगी, उसके साथ ही भविष्य का समय भी सुधरेगा। बढ़ती उम्र में सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहना संभव नहीं है।

हमें स्थाई इलाज के लिए ध्यान का रास्ता ही अपनाना चाहिए।

एक तो बुढ़ापा आने तक, इसका अभ्यास खूब हो जायेगा; दूसरा सांसारिक काम आपने आप कम हो जाऐंगे। अन्दर की यात्रा बढ़ेगी और बाहर का अकेलापन अपने आप मिटेगा – मिटाना नहीं पड़ेगा। धीरे धीरे हम स्वयं से जुड़ने लगेंगे और उदासी हमारे आस पास तो क्या ? कोसों दूर भाग जाएगी।

ध्यान कैसे करना है?

बस आपने चुपचाप किसी आसन में – चाहे पलंग हो, कुर्सी हो या जमीन पर

आसन बिछा कर, आंखें बन्द करके, एक बार भगवान् का नाम मन में लेकर, 30 मिनट तक बैठना है। जो होता है – होने देना है। जमीन से अपना सीधा संबंध नहीं होना चाहिए। कुर्सी पर बैठें, तो चप्पल या कपड़ा पांव के नीचे रखकर बैठो। दिन में 30-30 मिनट का अभ्यास, 40 दिन में ही आपका जीवन बदल देगा। जो जिन्दगी जीने की इच्छा खत्म हो गई थी – वो सुहानी और लम्बा जीने की इच्छा होगी।

पढ़ने से नहीं, करने से सब होगा।

ध्यान से बढ़कर जिन्दगी में कुछ नहीं। न ही कहीं और से कुछ मिलने वाला है। फिर भी कई बार आदमी इतने तनाव में होता है कि वह बैठ ही नहीं पाता।

आदमी जवीन में 6 काम तो अवश्य करता है – जैसे सोना, उठना, खाना, पीना, बोलना और सुनना।

इन्हें ध्यान योग से जोड़ लें। जैसे सोते समय बिस्तर पर कुछ देर बैठकर भगवान् से जुड़ जाएं। और कुछ नहीं तो धन्यवाद करें। बार बार धन्यवाद करते सोएंगे, तो योग होगा। उठें तो एकदम नहीं उठें। कुछ देर फिर जुड़ जाएं उस प्रभु से। यह पक्का है; जो नींद पहले आती थी; उससे अच्छी और सच्ची नीन्द आएगी।

धन्यवाद में बहुत शक्ति है।

ऐसे बाकी दिन; जो जरूरी काम करता है, उसके साथ धन्यवाद जोड़ लें। एक बार इंसान धन्यवाद जोड़ लेंगे – तो भगवान् कहे बिना; उसको अपने साथ जोड़ लेंगे। ऐसा जोड़; कि बस मुक्ति के मार्ग पर ही ले जाएंगे।

मनुष्य जीवन लेना, सफल हो जाएगा।

जो अपने को अभागा और अकेला समझता था – अब वो ही सबसे ज्यादा भाग्यशाली हो जाएगा। और जिससे भगवान् ही जुड़ जाए; सारी दुनियां उसी के साथ। फिर दुनियां की चाह भी खत्म हो जाती है। बस मुक्ति ही मुक्ति याद आती है।

अगर चाहते हो अकेलापन भगाना; तो ध्यान को जरूर अपनाना।
आज कल मत करना, जिस समय पढ़ो उसी समय आरम्भ हो जाना।
अपना कलयाण होने में देर नहीं, बस नेक रास्ता मिलने की देर थी।

मैं परमात्मा हूं; और परमात्मा मुझमें है

—डॉ० बलदेव राज नाशा

धूप में बैठने से सूर्य की गर्मी तथा रोशनी दोनों; किरणों द्वारा अपने आप हमें प्राप्त हो जाती हैं। इसी तरह उपासना द्वारा हमारी जीवात्मा (प्रभु अंश) का सम्पर्क सीधे ही प्रभु से हो जाता है और प्रभु के गुण;

अखंड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान एवं अखण्ड आनन्द स्वयं ही हमें प्राप्त हो जाते हैं।

प्रभु तो आपके भीतर विराजमान है। आंखें बन्द करके एकान्त में बैठो। बाहर के संसार से कट जाओगे।

अपने अन्दर प्रभु से बातें होने लगेंगी

उनसे अपने जरूरी काम करा लो। जब प्रभु (थानेदान) तुम्हारे सारे काम कर सकता है, तो छोटे सिपाही से काम क्यों कराते हो?

प्रश्न :- प्रात: काल का ध्यान तो बढ़िया हो जाता है।

रात्रि को ध्यान के लिए बैठना बहुत कठिन होता है?

उत्तर :- आराम करने के बाद तरो ताजा अवस्था में ध्यान के लिए बैठना बहुत अच्छा और अधिक लाभदायक होता है। दिन भर परिश्रम करके थके होने के कारण ध्यान के लिए बैठना कठिन होता हे। ध्यान का लाभ कम होता है। प्रयास करके भी नींद से बच नहीं सकते। अच्छा तो यह है कि दोपहर अथवा सायंकाल आराम करें। उसके बाद ध्यान के लिए बैठें। आराम के बाद ध्यान के लिए बैठना सुखदाई और अधिक लाभकारी होता है। इसीलिए प्रात: आराम के बाद ध्यान का महत्व है।

ध्यान बनाता है; शक्तिशाली

पृथ्वी किसने बनायी; इसमें गुरुत्वाकर्षण शक्ति और पृथ्वी की गति सम्बन्धित नियम बनाने वाला कौन है? सूर्य, चन्द्र, नभ में अनन्त तारागणों और इनकी गति में सामंजस्य पैदा करने वाला कौन है? सांस चलती है, चलायी नहीं जाती। नसों में खून दौड़ता है और खाना पचता है। हमारे मन, बुद्धि, शरीर और इन्द्रियों को

शक्ति उस समय मिलती है; जब हम कुछ नहीं करते। या ये कहें कि जब मेरे द्वारा क्रियाएं करने वाले 'मैं का अस्तित्व', खत्म हो जाता है।

उस समय कौन हमें शक्ति देता है?
मनुष्य का जीवन कुछ वर्षों का होता है।
इस अन्तर्काल में कब क्या हो जाएगा?

इसका ज्ञान न होने के कारण ही मनुष्य अपने भविष्य की कुछ दुखित संभावनाओं से भयभीत रहता है। अपनी व्यक्तिगत शक्ति के अनुसार (दूसरे शब्दों में बुद्धि और क्रियाशक्ति के बल पर) संभावित दुखित घटनाओं से दूर रहने का प्रयास भी करता है। सृष्टि की सारी क्रियाएं दो तरह की क्रियाओं में बंट जाती हैं :-

1) कुछ क्रियाएं व्यक्तिगत मनुष्य का 'मैं'; अपने कर्मेन्द्रियों और बुद्धि की शक्ति के माध्यम से करता है।

2) दूसरी क्रियाएं वे, जो स्वत: होती हैं। ऐसी क्रियाओं की जिम्मेवारी कोई भी जीव, अपने ऊपर नहीं लेता। ऐसी क्रियाओं का 'कर्ता', 'होनी की शक्ति' है। ईश्वर; 'होनी की शक्ति' के स्वरूप में, सारी सृष्टि में व्याप्त है। सर्वव्यापी होने के साथ साथ, यह शक्ति सर्वशक्तिशाली भी है। इसलिए उसका अंश हर प्राणी में जीवात्मा के रूप में होना भी स्वाभाविक है। इसके साथ साथ सर्वशक्तिशाली बनने का गुण; होना भी अनिवार्य है।

हमारी जीवन की अनुभूतियां भी हमें यही बताती हैं कि, प्रभु का अंश होने के नाते ऐसा कोई व्यक्ति पैदा ही नहीं होता; जिसके अन्दर आयु के बढ़ने के साथ साथ अपनी शक्ति बढ़ाने की इच्छा ना हो। अपनी शक्ति बढ़ाने की इच्छा सबमें रहती है; लेकिन शक्ति बढ़ाने में, सफल कुछ ही होते हैं। शक्तिशाली बने रहने की इच्छापूर्ति, ध्यान (Meditation) द्वारा ही सम्भव है। ❑

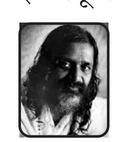

'स्व:' की अनुभूति ही; अध्यात्म

✍ महर्षि श्री महेश योगी

यह 'स्व:' (जीवात्मा) ही परमात्मा का अंश है। यही जीव का स्वरूप है; शुद्ध स्वास्थ्यमय, शक्तिमय, आनन्दमय, ज्ञानमय और प्रेममय। इसी की अनुभूति प्राप्त

करना अथवा इसी का प्राकट्य होना ही; आध्यात्मिक विकास है। स्पष्ट है कि स्वरूप अन्दर स्थित है। पर ढका हुआ है; मल, आसक्ति, अहंकार और मिथ्या अपनत्व के विकारों से। ये विकार; अपने शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि और अहं में हैं। अध्यात्म मार्ग पर निरंतर गति हेतु साधक को ध्यान साधना द्वारा इन विकारों को निकालना है।

कितना ही अशान्त मनुष्य क्यों ना हो? इस ध्यान साधना के आरम्भ से ही उसे हल्कापन अनुभव होने लगता है। 5 मिनट में ही यह अनुभव होने लगता है कि यह कितना अच्छा है। हमने यह नहीं सोचा था; कि यह अनुभव इतना शीघ्र हो जायेगा। बस एक कदम भीतर की ओर बढ़े; कि आकर्षण बढ़ने लगता है। बढ़ता हुआ आकर्षण; तनाव दूर कर देता है। संसार के सारे तनाव इसीलिये हैं; कि हम जो चाहते हैं, उसे पाने में असमर्थ हैं। हमें यह चाहिए, हमें वह चाहिए; पर उसे पाने में हम सामर्थ्य नहीं हैं।

आन्तरिक वैभव की ओर मन एक कदम बढ़ा और निश्चित रूप से अधिक आनन्द का अनुभव हुआ। आनन्द का यह अनुभव; अभी तक की समस्त अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के समान है। तुरन्त ही तनाव दूर हो जाते हैं। सभी अनिद्रा आदि, सभी चिन्ताजनित मनोवैज्ञानिक रोग समाप्त हो जाते हैं। उनका कारण ही नष्ट हो जाता है।

यह वर्तमान संसार के लिये अत्यन्त विलक्षण वरदान है। एकदम स्वचलित है। हम लोग स्वचलित युग के वासी हैं। ❑

सत्संग

—प्रस्तुति : श्रीमती अनु जैन, भिवानी

सत्संग दो शब्दों का योग है; सत् और संग

सत् क्या है?

जो तिहुं काल, एक रस रहई।

जो तीनों कालों में एक समान रहता है। जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। ईश्वर, भगवान, ब्रह्म, राम, परमात्मा, आत्मा; ये सब शब्द एक ही सत् तत्व के

वाचक हैं। यह तत्व सदा निर्गुण, (Transcendental) निराकार, निर्लिप्त और अकर्ता स्वरूप में ही रहता है। संग की महिमा बहुत बड़ी है।

बिनसई उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग।

संग करने अर्थात् सम्पर्क में आने पर जो अधिक शक्ति सम्पन्न होती है; उसके गुण या अवगुण संग करने वाले में, मात्र संग करने से आने लगते हैं। इस प्रभाव के लिए अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती। ब्रह्मनिष्ठ सन्तों, महात्माओं ने सत्संग का सरल शब्दों में अर्थ किया है –

मन का श्रमरहित होकर अविनाशी तत्व के क्षेत्र में गतिशील रहना।

अन्य सन्तों में मूक सत्संग; ध्यान, भावातीत ध्यान, चुप साधन, जागृति सुषुप्ति शब्दों को सत्संग के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। सत्संग का क्या महत्व है?

सत् संगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि, सब साधन फूला॥

जिस प्रकार वृक्ष का मूल (जड़); वृक्ष का तना, डालियां, शाखाएं, पत्तियां, फूल और फल सभी कुछ प्रदान करता है – उसी प्रकार सत्संग सभी प्रकार के कल्याण और आनन्द देने वाला है। सत्संग से ही इस उपलब्धि की साधना (फूल) है; और साधना की सिद्धि (फल) भी सत्संग ही है – जो सत्संग प्रारम्भ करते ही मिलने लगता है।

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई॥

शठ; जिन पर किसी भी इच्छा का प्रभाव नहीं पड़ता। जो बदलने के नाम पर अत्यन्त कठिन और जड़ है, वे भी सत् का संग करने पर सुधर जाते हैं, बदल जाते हैं। यही नहीं

जिस प्रकार पारस पत्थर का संग (सम्पर्क) पाकर लोहा जैसी धातु भी सोना हो जाती है; उसी प्रकार सत्संग करने पर बुरे मनुष्य भी स्पृहणीय, गाह्य और मूल्यवान हो जाते हैं।

बहु वासना मसक हिमरासिहि।
सदा एक रस अज अतिनासिहि॥

जिस प्रकार बर्फ के पास मच्छर नहीं रह पाते; उससे दूर चले जाते हैं। उसी प्रकार उस अजन्मा और अविनाशी ब्रह्म (सत्) के पास जो भी बैठेगा और सत्संग करेगा, उसकी सभी वासनाएं अपने आप छूट जाएंगी। वास्तविकता तो यह है कि

जिसको भी छोड़ने का प्रयास किया जाता है,
वह और अधिक दृढ़ता से चिपक जाता है।

हां! कभी-कभी कुछ निर्बल होकर वह और अन्दर जाकर छिप जाता है, जहां वह अपने से अधिक सबल हो जाता है।

जाने ते छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे।
मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥
विषया विनिवर्तन्ते, निराहास्य देहिनः।
रस वर्ज्यं रसोअप्यस्य, परं द्रष्ट्वा निवर्तते॥

ऊपर की चौपाइयों और श्लोक का तात्पर्य एक ही है। विषयों का संयम करने से; उनका हानिकर प्रभाव जान लेने से विषयों का बल कम हो जाता है। कभी कभी उनका बाह्य रूप भी छिप जाता है और अनुकूल अवसर पाकर वे दुगुने वेग से हावी हो जाते हैं। उनका बीज तो ब्रह्म (परं द्रष्ट्वा) के दर्शन साक्षात्कार से ही नष्ट होता है और उनसे सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है। ब्रह्म का दर्शन या साक्षात्कार ही सत्संग है। गोस्वामी जी ने कहा है -

बड़े भाग पाइअ सत्संगा।
बिनहि प्रयास होहिं भव भंगा॥

जो सत्संग करते हैं; वे भाग्यशाली हैं, क्योंकि सत्संग से संसार के कष्टों का अन्त हो जाता है। सत्संग का महत्व बताने के लिए गोस्वामी जी कहते हैं-

तात् स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक अंग।

तूल न ताहि सकल मिली, जो सुख लव सत्संग॥

साधारण मनुष्य; जीवन को सुखी बनाने के लिए सत्कर्म (तीर्थाटन, जप, तप, दान) करते हैं। परन्तु इनसे अधिक-से-अधिक; उन्हें इस लोक में अल्पजीवी और अन्त में दु:खद परिणाम ही मिलते हैं। यहां तक कि ऐसे कर्मों से स्वर्ग की भी प्राप्ति हो सकती है।

पर 'स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी' है।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग इन अल्पजीवी और अन्त में दु:खदायी बाह्य सुखों को छोड़कर; मोक्ष पाने की आकांक्षा से जप, यज्ञ, दान, तपश्चर्या इत्यादि करते हैं।

परन्तु गोस्वामी जी का कहना है कि स्वर्ग और मोक्ष के सुखों को यदि तराजू के एक पलड़े पर रख दिया जाए और दूसरे पलड़े पर निमिष (क्षण) मात्र अवधि के सत्संग के फल को रख दिया जाए तो सत्संग वाला पलड़ा भारी होगा। ❑

प्रेम गली अति सांकरी

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

मन; एक ऐसा अस्तित्व है, जो अपने में पिरोई हुई आत्मशक्ति की मदद से, सारी सृष्टि में भ्रमण करने में सक्षम है।

सृष्टि दो भागो में विभाजित है - शरीर के बाहर जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं; और शरीर के अन्दर जिसे पिण्ड कहते हैं।

ब्रह्माण्ड इन्द्रियों द्वारा बुद्धि के माध्यम से, या 'मैं' द्वारा पहचाना जाता है।

ब्रह्म ने जीव को तीन अस्तित्व प्रदान किए हैं - मन, बुद्धि, शरीर।

बाहर के संसार में, अर्थात् बुद्धि की दुनिया में मन बुद्धि के साथ ही रहता है।

मन और बुद्धि मिलने से 'मैं' उत्पन्न हो जाता है।

अर्थात् मैं में मन और बुद्धि दोनों रहते हैं। यदि मन शरीर के अन्दर भ्रमण करे अर्थात् पिण्ड में, जो बुद्धि से परे का क्षेत्र है और इन्द्रियों से भी परे है। इस तरह पिण्ड में 'मैं' का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है।

मन का विचरण ही कर्म है और मन का विचरण ही ध्यान है।

भ्रमण का क्षेत्र बदलते ही पहले क्षेत्र का ध्यान समाप्त हो जाता है और दूसरे पहलू का ध्यान आरंभ हो जाता है। यदि पहले भ्रमण का क्षेत्र पिण्ड में है और दूसरे भ्रमण का क्षेत्र – ब्रह्माण्ड के क्षेत्र का है; तब हम महसूस करते हैं कि पहले मन का भ्रमण था, परन्तु 'मैं' नहीं था।

जब तक 'मैं' नहीं था ध्यान अन्दर का था और जब मैं आ गया, तब अन्दर का ध्यान टूट गया और बाहर का ध्यान आरंभ हो गया।

जब थकावट के कारण हम बिस्तर पर लेटते हैं; लेटने के पश्चात कब निद्रा आरंभ हो गई? किसी को पता नहीं चलता। यही प्रमाण है कि जब तक 'मैं' निद्रा में था, उस समय तक भ्रमण आन्तरिक जगत का था। निद्रा में रहते रहते कब स्वप्न शुरु हुए – इसका भी किसी को पता नहीं चलता। कारण मात्र यही है कि हमारे 'मैं' का न होना ही आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण का प्रतीक है।

मात्र भ्रमण ही ध्यान है।

जब स्वप्न शुरू हुआ, तो भी मुझे पता नहीं कि मैं स्वप्न देख रहा हूं। मुझे तो तब पता चला – जब स्वप्न समाप्त हुआ और इन्द्रिय जगत की जागृति शुरु हुई।

इन्द्रिय जगत की जागृति के साथ हमारा 'मैं' भी जागृत हो गया।

यद्यपि उसके पहले वह भी सुषुप्ति अवस्था में था। 'मैं' के सक्रिय होते ही इन्द्रिय जगत में अलग अलग पहुलओं में भ्रमण; अर्थात् ध्यान आरंभ हो गया और आन्तरिक जगत में भ्रमण अर्थात् ध्यान समाप्त हो गया। अपनी इसी अनुभूति को सन्त कबीर ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया।

प्रेम गली अति सांकरी, ता में दोउ न समाय।
जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि था मैं नाहीं॥

द्वैत जगत में प्रेम और द्वेष, एक दूसरे के विलोम हैं।

होनी एक है, करनी अनन्त हैं।
एक होनी में अनन्त करनी समायी हुई हैं।
होनी ही ब्रह्मा है।

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-105 : देवों की उन्नति करें, वे सुख करें प्रदान।
बढ़ता यह सहयोग ही, कर दे ब्रह्म समान॥

ध्यान यज्ञ द्वारा हम देवताओं की उन्नति करें। वे देवता हमें सुख प्रदान करें। इस प्रकार एक दूसरे के सहयोग और आदान प्रदान से हम ब्रह्म समान हो जाते हैं। ब्रह्मा ने मनुष्य से कहा; इस यज्ञ द्वारा तुम देवों की उन्नति करो और वे देवता तुम्हारी उन्नति करें। एक दूसरे के आदान प्रदान की इस क्रिया के फलस्वरूप तुम परम कल्याण को प्राप्त होवो। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, वायु, वरुण, पृथ्वी, ग्रह, तारे; जिन्हें देवता कहते हैं; अपनी शक्तियों से मनुष्य को इच्छित (आवश्यक) भोग देकर उनकी उन्नति करते हैं। यह हम जानते हैं;

मनुष्य उन्हें क्या देकर उनकी उन्नति करे?

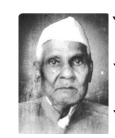

कुछ महात्मा कहे जाने वाले लोग कहते हैं कि इन देवताओं से हमें बहुत कुछ मिलता है। आदान प्रदान के इस नियम के अनुसार हमें भी उन्हें कुछ देना चाहिए। इसके लिए वे आय, वस्त्र और आभूषणों को कम से कम, दसवां हिस्सा देने की बात कहते हैं। उन्हें भगवत्भाव बना कर देने पर भी जोर देते हैं। साधारण मनुष्य भगवान का भाव नहीं बन पाता। तब महात्मा इस समस्या का हल यह बताते हैं – वह हमें दे दो, हम देवताओं को दे देंगे।

लोग समझते हैं कि महात्मा का तो भगवत्भाव बना हुआ है।
अतः दसांश उन्हें ही देकर वे निश्चित हो जाते हैं।

ऐसे महात्मा, लोगों को 'भय' भी दिखाते हैं कि; दसांश नहीं दोगे तो आदान प्रदान का नियम खंडित होने से; चोरी हो जाने, डॉक्टर द्वारा बीमारी में पैसे ले लेने, जेब कट जाने, खलिहान में आग लग जाने अथवा व्यापार या कारखाना फेल हो जाने के रूप में देवता दसांश से कहीं अधिक वसूल कर लेंगे। साथ ही लालच भी देते हैं कि; दसांश देने से कई गुणा अधिक मिलेगा और अभाव दूर हो जायेगा। वे आशवासन देते हैं; जब जमीन में एक दाना बोने से उसका अनेक गुणा फल मिल जाता है – तो देवता भी ऐसा ही करेंगे।

परन्तु देखा यह जाता है कि महात्मा उस धन को अपने ऊपर तथा जिन्हें अपना समझते हैं - उन अपनों पर खर्च करते हैं।

यहां वे यह कहते सुने जाते हैं कि हर प्राणी में भगवान है- इसलिए उनके अन्दर विद्यमान भगवान को ही हम देते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि यदि वे अपनों को देते हैं तो; भगवान को कैसे मिलता है?

क्योंकि 'मैं' और 'मेरा' या 'अपना', तो माया के क्षेत्र में आते हैं - गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार :-

'मैं' अरु मोर तोर तै माया।

निर्जीव वस्तुओं को तो हम; न कुछ दे सकते हैं और न उन्हें किसी चीज की आवश्यकता ही है। रही देवता रूपी शक्तियों की बात; तो शक्तियों और मनुष्य के बीच वस्तुओं का आदान प्रदान न संभव है; और न वह देवताओं के किसी काम का है। इसको यों भी समझें कि; ब्रह्मा ने जिस यज्ञ की रचना की थी, उस समय किसी पदार्थ और क्रिया की मदद नहीं ली गई थी- केवल ब्रह्म की शक्ति का ही उपयोग किया गया था।

जिस चीज को जो प्राणी बनाता है और जिस सामग्री से बनाता है; उस चीज की मरम्मत और टूट-फूट की पूर्ति उसी प्राणी द्वारा और उसी सामग्री से की जा सकती है।

इस सृष्टि का एक स्वभाव है कि यहां कोई भी चीज स्थिर नहीं है। सब क्षण-क्षण बदलता रहता है। देवता; जो प्रारंभ में ब्रह्म की शक्ति से पूर्ण थे, इस नियम से परे नहीं हैं। वे भी इस सृष्टि के ही अंग हैं; और समय बीतने के साथ, उनमें जो परिवर्तन आया - वह इनकी शक्ति में कमी होना है। इसे उनकी टूट फूट भी कह सकते हैं।

इस कमी की पूर्ति केवल ब्रह्म की शक्ति से ही हो सकती है।

पैसे, वस्त्र और आभूषणों से नहीं। देवताओं को ब्रह्म शक्ति देकर ही हम उनकी उन्नति कर सकते है; यह निर्विवाद है। सृष्टि का प्रत्येक प्राणी ब्रह्मा द्वारा रचा हुआ यह यज्ञ करता है। हर प्राणी कुछ देर बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त होकर; ब्रह्म के आन्तरिक भावातीत क्षेत्र में विचरण करता है। फिर बाह्य क्षेत्र में कुछ न

कुछ स्वाभाविक क्रिया करता है। अत: वह यज्ञ तो करता है - किन्तु परिश्रम से थक कर। सोकर; यह यज्ञ करने से ब्रह्म की बहुत कम शक्ति उसे प्राप्त होती है। यह उसके दैनिक खर्च से भी कम होती है।

उसके पास देवताओं को देने के लिए ब्रह्म शक्ति नहीं बचती।

परन्तु जो मनुष्य स्वेच्छा से जागृत अवस्था में बुद्धि के नियंत्रण से मुक्त होकर; गहरा विश्राम अर्थात् ध्यान रूपी यज्ञ करता हैं - वह आन्तरिक भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) से बहुत अधिक ब्रह्म शक्ति ग्रहण कर; बाह्य जगत में क्रियाशील होता है।

प्रकृति के नियमानुसार उस ब्रह्म शक्ति का एक अंश वातावरण में घुल जाता है। वातावरण में घुले इस ब्रह्म शक्ति को देवता ग्रहण कर, अपनी कमी पूरी करते हैं।

देवताओं की उन्नति करने का सही स्वरूप यही है। देवता भी अपनी कमी को दूर कर; मनुष्य को आवश्यक मात्रा में अपनी शक्ति देने की क्षमता बनाये रखते हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति ध्यान यज्ञ करता है (जिसे गीता में ज्ञान-यज्ञ कहा गया है); वह कालान्तर में देवताओं की उन्नति के साथ अपनी उन्नति करता है। वे दोनों अपनी पूर्णता को प्राप्त करते हैं; अर्थात् परमात्म-स्वरूप हो जाते हैं।

जब लोग यह यज्ञ नहीं करते और फलस्वरूप देवताओं की उन्नति नहीं करते; तब देवता क्षीण शक्ति होकर मनुष्य को अपनी शक्ति उस रूप में नहीं दे पाते - जो उसके लिये कल्याणकर है।

हम जानते हैं कि आज के युग में; कहीं गर्मी इतनी अधिक पड़ती है कि त्राहि त्राहि मच जाती है, तो कहीं पर बादल इतना अधिक बरसा देते हैं कि देश बाढ़ की विभीषिका से त्रस्त हो उठता है। कहीं पानी बिल्कुल नहीं बरसता; और हाय तोबा मच जाती है।

जाड़ों में शीत लहरी से मनुष्यों को जितना कष्ट उठाना पड़ता है - उससे हम अनभिज्ञ नहीं हैं। देवताओं की इस असमर्थता का कारण आज के युग में ध्यान यज्ञ न करने वाले व्यक्तियों का बाहुल्य होने से देवताओं को वातावरण से ब्रह्म की शक्ति नहीं मिलना है; जिससे मनुष्य को आवश्यक भोग देने की उनकी क्षमता में

बहुत कमी आ गयी है।

इसके विपरीत जब समाज में अधिकांश लोग ध्यान यज्ञ करके वातावरण में पर्याप्त ब्रह्मशक्ति पिरो देते थे, तब देवताओं की क्षमता बनी रहती थी और वे मनुष्यों को उनकी आवश्यकता के अनुसार ही सर्दी, गर्मी, पानी इत्यादि देने में समर्थ थे। देखिये राम राज्य में क्या स्थिति थी–

महि रहि पूरि मयुखन्हि, रवि तप जेतनेहिं काज।
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

उस काल में पृथ्वी, चन्द्रमा की सुखद-शीतल चन्द्रिका से नहाई रहती थी। सूरज भी उतनी ही गर्मी देता था, जितने की मनुष्यों को आवश्यकता होती थी; और बादल भी मनुष्य की आवश्यकतानुसार ही पानी बरसाते थे।

देवताओं को केवल वातावरण में पिरोयी ब्रह्मशक्ति की ही आवश्यकता है।

हम केवल यही ब्रह्म शक्ति उन्हें ध्यान यज्ञ द्वारा दे सकते हैं। इसी से उनसे आदान प्रदान हो सकता है। अन्य किसी विधि से नहीं। न रुपया देने से, न वस्त्र देने से, या किसी अन्य वस्तु के देने से। जो लोग आध्यात्मिक साधना के नाम पर देवताओं को आदान प्रदान के नियम के पालन हेतु रुपया, वस्त्र, आभूषण देने की बात करते हैं और प्राप्त करते हैं - उनके इस दावे में कितना सत्य है? यह पाठक स्वयं देखें।

इस दोहे में देवताओं की उन्नति करने पर विचार प्रकट किया गया है।

इस दोहे में व्याख्या में यह स्पष्ट किया गया है कि; हम देवताओं की उन्नति कैसे करें? और उनकी शक्ति बढ़ाकर उनसे अपने लिये आवश्यक भोगों को कैसे प्राप्त करें? ध्यान की साधना के इस दोहरे लाभ से उन्नति करते हुए; हम सब दुखों से पार जा कर ब्रह्म स्वरूप भी हो सकते हैं - इसमें कोई सन्देह नहीं है।

यह दोहा गीता (3.11) का तात्पर्य व्यक्त करता है–

देवान्भावदतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

तुम लोग इस ध्यान यज्ञ (Meditation), के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त (मुक्त) हो जाओगे।

Cherish the gods unintrestedly,
And Cherish they would,
Fostering each other,
Attain the highest good.

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रातः 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक और उसी मन्दिर के Hall में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 4 बजे से सायं 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER